Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 3 | MARCH 2023

प्राचीन भारत में स्त्रियों की दशा : ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ सुरभि [1]

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, (विद्या संबल योजना) राजकीय महाविद्यालय, रतनगढ़.

ABSTRACT:

आदिकाल से ही समाज में नारी का गरिमामय एवं महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नारी को जीवन की आधारशिला माना गया है। नारी को समाज में जो सम्मान मिला वह उसकी साधना, सत्यता, सहनशीलता, सौम्यता, आदि सहज गुणों का ही फल है। धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी, शक्तिदायिनी दुर्गा, ज्ञानदायनी माँ सरस्वती तथा जनकनन्दिनी सीता के रूप में नारी को समाज में सम्मान दिया जाता रहा है। उसे श्री और लक्ष्मी के रूप में मनुष्य के जीवन को सुख व समृद्धि से दीप्त व प्रकाशित करने वाली कहा गया है। नारी का आगमन पुरुष के लिये शुभ सौरभमय और सम्मान का प्रतीक माना जाता है। नारी के बिना घर की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि यह मान्यता रही है कि जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरूष (परमात्मा) का कार्य अपूर्ण रहता है ठीक उसी प्रकार नारी के बिना नर का जीवन भी अधुरा है। नारी व नर को जीवन रूपी गाड़ी के दो चक्रों के समान माना गया है. उनकी बराबरी ही जीवन रूपी गाड़ी को गतिशील रख सकती है। इसलिये नारी को पुरुष की अद्धांगिनी कहा गया है।

प्राचीन काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो नारी का चित्र उस पर उज्जवल रूप से अंकित परिलक्षित होगा क्योंकि प्राचीन काल में नारी का सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक हर क्षेत्र में उचित स्थान था । जिसे प्रस्तुत शोधपत्र के द्वारा दर्शाने का प्रयास किया गया है।

KEYWORDS:

नारी, इतिहास, प्रतिष्ठा, वैदिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक।

शोधपत्र :-

नारी सृष्टि की आधारशिला है। माता और पत्नी के रूप में वह जिन कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती है उन्हीं कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों पर किसी राष्ट्र की उन्नति या अवनति आधारित होती है। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से सम्पूर्ण समाज ज्यादा प्रभावित होता है। ऐसा देखा गया है कि स्त्रियों की उन्नति एवं अवनति का इतिहास सम्पूर्ण समाज की उन्नति व अवनति का इतिहास कहलाया है। भारतीय इतिहास में विभिन्न रूपों में स्त्री के विकास, उसकी उन्नति, अवनति, उसके संघर्ष, उसको प्राप्त अधिकार और उस पर लगने वाले प्रतिबंधों की एक लम्बी कहानी है। जो इतिहास के विभिन्न रूपों में स्त्रियों की भिन्न-भिन्न स्थितियों को दर्शाती है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य :-

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि आर्यों का सामाजिक जीवन काफी सुव्यवस्थित था। परिवार में पुरूष की प्रधानता होते हुए भी वैदिककालीन भारतीय समाज में स्त्रियों को सम्मानित स्थान प्राप्त था[1]।

प्राचीन युग में नारी को सामाजिक समानता व प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उसे पुरुषों के समान सभी अधिकार प्राप्त थे। वैदिक युग में स्त्री जितनी स्वतन्त्र व मुक्त थी उतनी बाद के किसी भी युग में नहीं रही। नारी को जीवन के सभी क्षेत्रों, जैसे:- शिक्षा, यज्ञ, अभिव्यक्ति, विवाह, विचरण जीवन निर्वाह आदि की स्वतन्त्रता प्राप्त होना उसके प्रति सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण का प्रमाण है।

उस काल में घोषा लोपा मुद्रा, विश्व वारा, रोमशा, शश्वती आदि विदुषियों ने ऋग्वेद के कई श्लोकों की रचना की। कुछ विदुषियाँ सभाओं व दार्शनिक वाद- विवाद में भाग लिया करती थीं जिनमें सुलभा, गार्गी, मैत्रयी आदि उल्लेखनीय हैं। उन्हें वैदिक ऋषियों के समकक्ष माना जाता था। गार्गी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा, विलक्षण तर्क शक्ति, मेधा और सूक्ष्म विचार तन्तुओं से जटील पृच्छाएँ करके याज्ञवल्क्य को विदेह शासक जनक की सभा में शास्त्रार्थ में पराजित किया।

समाज की समृद्धि व परिवार की खुशहाली के लिए मनु ने कहा है कि नारियों को सदैव वस्त्र, आभूषण व उत्तम भोजन आदि से सम्मानित कर उन्हें प्रसन्न रखें। क्योंकि जहाँ नारिया प्रसन्न होती हैं वह कुल हमेशा उन्नति करता है। जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवताओं का निवास होता है. इसके विपरीत जहाँ नारियों का आदर नहीं होता वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती है। वृहत्पराशर के अनुसार जहां पत्नी है वहीं घर है, पत्नी के बिना घर वन के सदृश्य है, घर से व्यक्ति गृहस्थ नहीं बनता पत्नी के साथ ही गृहस्थ कहलाता है। वस्तुत पत्नी पुरूष की धर्म-सहचरणी है। पत्नी के रूप में नारी के महत्व को स्मृतिकारों ने न केवल स्वीकार किया अपितु उसके द्वारा विवाह पश्चात् दायित्वों के निर्वाह पर अधिक जोर दिया गया। है। जिससे उसके योगदान का अधिकार क्षेत्र परिवार तक ही सीमित हो गया।

समाज में कन्या को अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता केवल उसके वैयक्तिक तक ही सीमित नहीं थी वरन उसके सामाजिक योगदान को भी प्रभावित करती थी। वैदिक काल में कन्याओं का विवाह युवावस्था में किया जाता था।

प्रत्येक सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में स्त्रियों की उपस्थिति अनिवार्य थी। स्त्री को पुरूष की सहधर्मिणी माना जाता था और यह समझा जाता था कि स्त्री के बिना पुरूष का कोई यज्ञ य धार्मिक कृत्य पूरा नहीं हो सकता था[2]। सतानोत्पादन, सतान का पालन-पोषण, अतिथियों तथा मित्रों का सत्कार, लोक व्यवहार का पालन घर के बड़े बुर्जुगों की सेवा, धार्मिक कृत्य स्त्रियों के द्वारा किये जाते थे। मनु "नारी को कोई अनिच्छित बोझ नहीं समझते, अपितु मनुष्य की सांसारिक एवं आध्यात्मिक अभिलाषाओं की पूर्ति का मुख्य साधन मानते थे"[3]। स्त्रिया सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन में पुरुषों का हाथ बंटाती थीं।

शैक्षिक वातावरण :-

प्राचीन युग में कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। विद्या आरम्भ करने से पूर्व कन्या का भी उपनयन संस्कार किया जाता था व ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये ये विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करती थीं हारीत संहिता के अनुसार वैदिक काल में दो प्रकार की छात्राएँ होती थीं :-

1. सद्योवधु

2**.** ब्रह्मवादिनी ।'

सद्योवधु छात्राएँ विवाह होने से पूर्व वेद मंत्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। ब्रह्मवादिनी छात्राएँ जीवन पर्यन्त ज्ञानार्जन में लगी रहती थीं और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपालन करती थीं। इन नारियों ने वेदाध्ययन काव्य रचना, त्याग - तपस्या द्वारा ऋषिका का पद प्राप्त किया था। इनके द्वारा अनेक वैदिक श्लोकों की रचना की गई। शौनक ने अपनी कृति वृहददेवता में मंत्र दृष्टा नारियों के नामों का उल्लेख किया है। उपनिषदों में मैत्रयी. गार्गी आदि अनेक विदुषियों का उल्लेख मिलता है। वे दर्शन, तर्क मीमांसा, साहित्य व विभिन्न विषयों की. पण्डिता थी। नारियों सूत कातना, वस्त्र चुनना च ललित कला में निपुण होती थीं।

वे अस्त्र शस्त्र चलाने का ज्ञान प्राप्त करती थीं। विश्पला अपने पति के साथ युद्ध में गई थी जहाँ उसकी टांग टूट जाने पर अश्विनी कुमारों ने उसकी चिकित्सा की । वृत्रासुर के साथ उनकी माता दनु भी युद्ध में गई जो इन्द्र द्वारा मारी गई। नमुचि के पास नारियों की एक सेना थी तथा मुद्गल पत्नी इन्द्र सेना ने शत्रु को पराजित कर उनसे अपहृत गायें छुड़ा ली थीं। उत्तर वैदिक काल में नारियाँ व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि की भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। त्रिपुर की नारियाँ अपनी भाव-भंगिमाओं की वजह से लोगों को प्रसन्न करती थी।' चित्रकला में कन्याओं की रुची थी । बाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की कन्या की सखी चित्रलेखा ने अनेक देवों, गंधवों और मनुष्यों की आकृतियों का चित्राकन किया जिसमें अनिरूध का चित्र उल्लेखनीय है।" बौद्ध व जैन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उच्च कुल की नारियाँ सुशिक्षित होती थीं। संघमित्रा ने लंका जाकर बौद्ध शिक्षा का प्रचार किया शुभा सुलभा व अनोपमा आदि नारियाँ धर्म व दर्शन में पारंगत थी।

तत्कालीन युग की उच्च शिक्षा प्राप्त भिक्षुणी खेमा उल्लेखनीय है। जैन परम्पराओं में कौशाम्बी नरेश की पुत्री जयन्ती का उल्लेख मिलता है।" जयन्ती ने महावीर स्वामी के साथ वाद - विवाद किया था। इसने महावीर स्वामी के तर्कों से सन्तुष्ट होकर प्रवज्या ग्रहण की तथा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती रही।

प्राचीन कालीन समाज में सह-शिक्षा का प्रचलन था[4]। प्राचीन भारत में शिक्षा से तात्पर्य वैदिक शिक्षा से था। कन्याएं भी बालकों की भांति यज्ञ करती थीं। यज्ञ करने एवं वैदिक प्रार्थनाओं को करने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त था जिसका उपनयन संस्कार किया गया हो। यजुर्वेद के अनुसार बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था[5]। कन्याएँ विस्तृत ज्ञान राशि प्राप्त कर सकती थीं ये बुद्धि एवं शिक्षा में अग्रणी थीं[6]। वशिष्ट सूत्र के अनुसार उपाध्याय की तुलना में आचार्य दस गुना प्रतिष्ठित हैं, आचार्य से सौ गुना प्रतिष्ठित पिता हैं और पिता से सहस्र गुना प्रतिष्ठित पद माता का है, माता के पद की यह प्रतिष्ठा प्राचीन भारत में स्त्रियों की उच्च स्थिति का स्पष्ट प्रमाण है[7]। इस काल में गार्गी, मैत्रयी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। ये वाद-विवाद तर्क शास्त्र में पारंगत थीं। रोमशा, उर्वशी घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि परम् विदुषी स्त्रिया हुई. उन्होंने वैदिक ऋचाओं की रचना की। कन्याएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। एक स्थान पर तो विदुषि पुत्री ही कामना करने वाले पिता की चर्चा की गयी है।

अनेक नारियाँ ज्ञान प्राप्त कर शिक्षिका का जीवन व्यतीत करती थीं. ऐसी नारियाँ उपाध्याया कहलाती थीं। ये शिष्याओं को विभिन्न विषयों की जानकारी प्रदान करने के साथ मीमांसा और व्याकरण शास्त्र जैसे जटिल विषयो का अध्यापन करवाती थीं। शिक्षा में कुशल माणवीका के साथ विवाह करने वाला पुरूष अपनी पत्नी से गौरवान्वित होकर उसके (पत्नी) नाम से स्वयं का नामकरण करता था।' शिष्याओं के लिये अलग से शिक्षण संथाओं का प्रबन्धन था। पाणिनी ने विशेष रूप से छात्राशालाओं का उल्लेख किया है[8]।

स्वतंत्रतामय वातावरण

सोलह वर्ष की अवस्था तक कन्याएँ अविवाहित रहती थीं। लड़कियों का विवाह युवावस्था में होता था। वे अपना जीवन- साथी चुनने के लिए स्वतंत्र थीं। स्त्रियां चाहतीं तो अपना जीवन बिना विवाह के भी व्यतीत कर सकती थीं[9]। पूर्ण युवती होकर स्वयंवर द्वारा अपने पति का वरण करती थी और अपने परिवार में 'साम्राज्ञी' बनकर रहती थी। उन्हें पुरूष की सहधर्मिणी एवं अर्धांगिनी तथा गृहस्वामिनी माना जाता था[10]। जहां पर स्त्रियों का सम्मान होता है वहां देवताओं का निवास होता है। इसका प्रमाण हमें वेदों के अनेक मंत्रों से मिलता है। वेद के एक मंत्र के अनुसार वधु अपने श्वसुर सास, ननद, देवर आदि पर साम्राज्ञी के रूप में शासन करती थी। नारियाँ सामाजिक, धार्मिक उत्सवों व समारोह में अलंकृत होकर बिना किसी प्रतिबन्ध के भाग लिया करती थीं। रामायण में सीता का विचरण तथा महाभारत में द्रोपदी का भ्रमण उनकी उन्मुक्तता और स्वच्छन्दता व्यक्त करता है, धीरे- धीरे नारी की स्वतन्त्रता को सीमित किया जाने लगा।

वैदिक काल में नारी स्वतन्त्रता के कारण ही अनेक विदुषियों ने श्लोकों की रचना करने के साथ महर्षियों से शास्त्रार्थ भी किए। नारी स्वतन्त्रता के परिणाम- स्वरूप अनेक ग्रन्थों में उनके योगदान का उल्लेख मिलता है।

पति की मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष के लिए विधवा को मधु, मांस, मदिरा तथा नमक का त्याग कर, भूमि पर शयन करना पडता था। तत्पश्चात् यदि वह पुत्र विहीन होती तो वह घर के बड़ों की सलाह एवं अनुमति से देवर से नियोग कर संतान उत्पन्न कर सकती थी[11]। अर्थववेद में उल्लेखित विधवा विवाह से सिद्ध होता है कि वैदिक समाज में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित था तथा वह किसी भी व्यक्ति से विवाह कर सकती थी. किन्तु नियोग" प्रथा को पुनर्विवाह की अपेक्षा समाज में अधिक मान्यता दी गयी थी[12]। वैदिक काल में नारी मातृ रूप में देवी के समान पूज्य पूज्य मानी जाती थी। विशेष रूप से वीर पुत्र की जननी को समाज में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था[13]। वृद्धावस्था में माता का परिपोषण पुत्र का परम कर्तव्य था। माता के दुःख दुःख के निवारण हेतु पुत्र को अपने प्राणों की चिन्ता नहीं रहती थीं।

आर्थिक परिप्रेक्ष्य

स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार स्वीकार किया गया तथा उन विशेष परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया जिनके कारण वे सम्पत्ति में अपना हिस्सा प्राप्त करती थी। परिवार में पुत्री को पुत्र से किसी भी प्रकार कम नही समझा गया। पुत्री दत्तक पुत्र से श्रेष्ठ मानी जाती रही। पुत्र के न होने पर वह सम्पत्ति की उत्तराधिकारी मानी जाती थी[14]।

वैदिक युग में कन्या को विवाह में दिये जाने वाले दहेज को स्त्री धन कहा गया। स्त्री धन पर पत्नी का पूर्ण अधिकार होता था। इस सम्पत्ति का उपभोग पति नहीं कर सकता था। उन्हें घर की वस्तुओं की स्वामिनी कहा जाता था।' जब याज्ञिक कर्मकाण्ड में स्त्रियों का बहिष्कार होने लगा तो उनके दायभाग का अधिकार भी जीना जाने लगा। पत्नी पति के दाय की उत्तराधिकारी होती थी

स्त्रीधन पर स्त्रियों का पूरा अधिकार था, कुछ विशेष परिस्थितियों में जैसे अकाल अनिवार्य धर्म कार्य, बीमारी आदि में ही पति को सौदायिक सम्पत्ति का स्वयं के लिए उपयोग करने की अनुमति थी। स्त्री धन का दुरूपयोग करने वालों के लिए शास्त्रकारों ने दण्ड की भी व्यवस्था की थी। वैदिक युग में स्त्री धन के उत्तराधिकार के प्रश्न पर पुत्रियों को प्राथमिकता दी गयी। गौतम और बौधायन ने अविवाहित और निर्धन कन्या को स्त्री धन का दायद माना। सूत्रकारों के समान स्मृतिकारों ने भी चूंकि कन्या में माता का अंश अधिक होता है इसलिए उसे स्त्री धन का उत्तराधिकारी बताया है।

यदि पत्नी की निःसन्तान मृत्यु होती थी तो उसके स्त्री धन का उत्तराधिकारी उसका पति होता था। वैदिक युग में विधवाओं को सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त नहीं था। परवर्ती काल में विधवा के सम्पत्ति के अधिकार को समाज में स्वीकृति मिली। यदि विधवा पुनर्विवाह नहीं करती है अथवा नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न नहीं करती है तो उसके भरण-पोषण का कुछ प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए। ऐसी स्थिति में विधवा को पति की सम्पत्ति में हिस्सा प्रदान किया गया। किन्तु दायभाग व मिताक्षरा के अनुसार मृत पति के सम्पूर्ण धन को पुत्र के अभाव में विधवा प्राप्त करती रही। पति के संरक्षण में रहने वाली पत्नी की अपेक्षा विधवा का दायभाग पर अधिक अधिकार होता था। पति के ना रहने पर पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की पत्नी ही उत्तराधिकारी होती थी।

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता के लिए स्त्रियों विभिन्न प्रकार कि जीविका अपनाती थी और समाज द्वारा उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

धार्मिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन काल में नारियों को धार्मिक अधिकार पुरूषों के समान ही प्राप्त थे। धार्मिक अनुष्ठानों में पति के साथ समान रूप से वह सम्मिलित होती थी क्योंकि पत्नी की अनुपस्थिति में धार्मिक अनुष्ठान का सम्पन्न होना असंभव होता था। पत्नी धार्मिक अनुष्ठानों के लिए सहायिका मानी जाती थी। मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र का होना अतिआवश्यक था और पुत्र की प्राप्ति पत्नी द्वारा ही सम्भव थी । वस्तुतः धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से पत्नी के महत्व को सभी ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है। पति व पत्नी दोनों के द्वारा संयुक्त रूप से प्रातः व सायं काल देवताओं को आहुति अर्पित करने के लिए अग्निहोत्र कर्म का प्रसंग मिलता है। पत्नी से अनेक धार्मिक क्रियाएँ सम्पादित की जाती थी।

राजनैतिक परिस्थिति

नारी ने जीवन की विषम परिस्थितियों में भी अपने साहस व योग्यता का परिचय समय-समय पर दिया। पति व पुत्र के अभाव में नारी ने शासन व्यवस्था के संचालन न्यायकर्त्ता व सेना के संगठन में अपनी कोमलता के विरुद्ध दृढ़ता का परिचय दिया। वह इतिहास अविस्मरणीय है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर पुरूषों को राजनीति विषय परामर्श देने में भी वह कभी पीछे नहीं रही है।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि नारियाँ पुरुषों के समान विविध विधाओं में पारंगत थी। एक ओर नारी ब्रह्मवादिनी बनकर आध्यात्म चेतना से समाज को उन्नत करती थी तो दूसरी ओर सद्योवधू के रूप में परिवार के संचालन में पति को पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में नारी का विशेष महत्व था, यह स्वयं लक्ष्मी है, जिस कुल में उसे दुःख मिलता है वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत जिस कुल में यह दुःख रहित होती है उस कुल का सवर्धन (विकास) होता है[15]। कामसूत्र में स्त्री को पुष्प की उपमा दी गयी है। संपूर्ण अध्ययन से यह निश्चित होता है कि प्राचीन काल में नारियों की स्थिति सामाजिक आर्थिक राजनीतिक धार्मिक आदि सभी रूपों में उन्नत दशा को प्राप्त थी लेकिन जैसे-जैसे युग बदला वैसे-वैसे नारियों की स्थिति में भी परिवर्तन आते चले गए जो निरंतर अध्ययन का विषय हो गए।

REFERENCES

1. शर्मा व व्यास, "भारत का इतिहास, प्रारम्भ से 1200 ईस्वी तक पृष्ठ 114
2. सत्यकेतु विद्यालंकार, 'प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन". पृष्ठ 207
3. डॉ. लता सिंहल, "भारतीय संस्कृति में नारी पृष्ठ 233
4. शर्मा व्यास, भारत का इतिहास प्रारम्भ से 1200 ईस्वी तक, पृष्ठ 131
5. डॉ लता सिंहल- भारतीय संस्कृति में नारी पृष्ठ 132-133
6. अथर्वेद 1.5.18 ; डॉ. जयशंकर मिश्र, "प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 344
7. सत्यकेतु विद्यालंकार, 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन", पृष्ठ 213
8. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, पृष्ठ 3
9. डॉ. लता सिंहल, "भारतीय संस्कृति में नारी", पृष्ठ 134

10. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पृष्ठ 213

11. बौद्धायन धर्मसूत्र 2/2/66-68, डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, "प्राचीन भारत में नारी, पृष्ठ 12

12. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, पृष्ठ 13

13. डॉ. शशि अवस्थी, प्राचीन भारतीय समाज, पृष्ठ 144

14. ऋग्वेद 1.124.7 ; डॉ श्री कृष्ण ओझा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास. पृष्ठ 300

15. मनु- शोचन्ति जामयो यत्र विनश्पत्याशु तत्कुलम न शोचन्ति तु यत्रैव वर्द्धते सर्वदा।

विमल चन्द पाण्डेय, "भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 181